प्राचीन विधि और न्याय–व्यवस्था का बदलता परिदृश्य

डॉ० गीता यादव
अध्यक्ष–राजनीति विज्ञान विज्ञान
टी०डी०पी०जी० कालेज, जौनपुर

आँग्ल–सेक्शन विधि–शास्त्र की रूढ़ियों और परम्पराओं के उत्प्रवाह से अभिभूत भारत का समकालीन समाज प्रायः प्राचीन भारत की विधि–शास्त्रीय परम्राओं का अनदेखा कर दिया करता हैं। स्वतंत्रता के बाद कुछ रूक्ष और संक्षोभकारी न्यायिक उपगमन के बाद देश की वर्तमान न्याय व्यवस्था में अब सीधा और सरल न्याय पथ का अनुगमन प्रारम्भ हो रहा हैं। भारतीय विधिशास्त्र के क्षेत्र में भी प्राचीन विधि का महत्वपूर्ण अध्ययन बहुत कम किया गया हैं अब प्राचीन भारत की समृद्वशाली विधि–पद्धति की सोने की खानों का अन्वेशणात्मक शोध किया जाना आवश्यक हो गया है। ताकि हम अपने अतीत की विधि और न्याय व्यवस्था की प्राधिकार पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें और उसे प्रकाश में ला सकें।

कोई भी कल्याणकारी राज्य निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन व्यवस्था से अपने को दूर रखता है, सामाजिक हितों को किसी अन्य हित का अधीनस्थ बनाना खारिज करता है, व्यक्ति की प्रसन्नता को उनकी सम्पूर्णता में मान्य करना है। और व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिये विधि के शासन का सम्मान करता है। प्राचीन भारतीय विधि और न्याय व्यवस्था में इन विशिष्टताओं का प्रकाशपुँज, दृष्टिगोचर होता है। विधि की सर्वोच्चता, जो आधुनिक लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का कोण है, व आधारशीला भी, जिस पर प्राचीन भारत का प्रशासनिक भवन निर्मित किया गया था। शक्ति पृथक्ककरण सिद्धान्त के अभिस्वीकृत आधुनिक लेखकों के जन्म के बहुत पूर्व यह सिद्धान्त प्राचीन भारत की विधिशास्त्रीय संकल्पना में मौजूद था। राजा को विधान का निर्माण नहीं करना था और इस निमित गठित परिषद को व्यवस्थित ढंग से नूतन विधि को व्यक्त करना था। विधि के समक्ष समता को मान्य किया गया था, राज्य के अधिकारियों के निरंकुश कार्य की सदैव निन्दा की जाती थी। बच्चों, स्त्रियों, असहायों और बीमार को सुरक्षा प्रदान की जाती थी। संघ या संस्था निर्माण का अधिकार और विचार, विश्वास और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मान्य किया गया था। प्रजा के कल्याण में राजा का कल्याण निहित था, प्रजा को जो कुछ पसन्द था, वही राजा को भी पसन्द था, उसकी अपनी पसन्द का कोई महत्व नहीं था। क्या किसी कल्याणकारी राज्य में विधि के शासन की इससे भी अधिक उत्कृष्ट संकल्पना हो सकती है।

प्राचीन भारतीय विधि और न्याय व्यवस्था में ऐसी अनेंको विधियों को देखा जा सकता है, जिनके द्वारा व्यक्तियों के आचरण को विनियमित किया जाता था और जिनकी राज्य के अधिकारियों और सेवकों द्वारा प्रवर्तित किया जाता था। संविदा, धन को उधार देने, विक्रय भूमि के उपयोग, बाट और माप, व्यापार और वाणिज्य, मूल्य निर्धारण, क्रय और विक्रय पर कर, आयात पर कर दाँव और जुँआ जैसे विविध प्रकार के विषयों पर निर्मित विधि इस बात को प्रमाण है कि इन क्षेत्रों में कितनी सतर्कता और सावधानी के साथ प्राचीन भारतीय विधि–पद्धति कार्य करती थी। मजदूरी और उसका निर्धारण, अवकाश प्रसुविधा, पेन्शन, प्रोत्साहनों, काम करते हुए मरनें

वालो के वारिसों के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा के अन्य उपायों से सम्बन्धित विधि– उपबन्ध इस बात को प्रदर्शित करते हैं कि भारत की पुरानी विधियों में आधुनिक प्रवृत्तियों का कितना सादृश्य था। दण्ड–विधि के क्षेत्र में भी दण्ड के लिये निश्चित दिशा निर्देश दिये गये थे और दण्ड की मात्रा को आरोपों की गंभीरता के अनुपात में निर्धारित किया जाता था। धर्मशास्त्रों के अध्ययन से यह भी प्रकट होता है। कि प्राचीन काल में भी जैसा की आज भी है, मृत्यु–दण्ड के सन्दर्भ में कोई एक निश्चित मत नहीं था, क्योंकि धर्मशास्त्रों में उल्लिखित बातें अन्तिम नहीं मानी जाती थी। उनमें खुले और स्वतंत्र विचार–विमर्श को मना नहीं किया गया था और परिवर्तनों को अनुज्ञेय बनाया गया था। उन दिनों भी उपभोक्ता हितों का उल्लघंन शास्त्र के अधीन था और पर्यावरणीय मूल्यों को मान्यता प्रदान की गई थी। अपमिश्रण, बाट और माप में धोखा–धड़ी और विक्रय कें संव्यवहार में छल–कपट जैसे उपभोक्ता अपराधों के लिये अर्थ दण्ड की व्यवस्था की गई थी। कूड़ा कतवार को राजमार्ग पर डालनें, लोकमार्गों पर अवरोध, जलाशयों और बाग–बगीचों को दूषित करने जैसे पर्यावरणीय अपराधों के लिये दण्ड का निर्धारण किया गया था। पुरातन काल में न केवल कदाचार और वृत्तिक उपेक्षा को, अपितु अपराधों के निवाराण मे मदद करने में विफल रहना भी दाण्डिक न्याय प्रक्रिया के घेरे में रखा गया था। प्राचीन भारत की दस विधि स्थिति के सन्दर्भ में इस बात का समर्थन किया जा सकता है कि हमारी आज की दाण्डिक विधियों में भी किसी अपराध के निवारण में सकारात्मक मदद न किये जाने पर दण्ड का उपबन्ध किया जाना चाहिए, विशेषकर उस स्थिति के सन्दर्भ में जब जनता के सामने ही लोक सम्पत्ति की क्षति की जा रही हो और जनता मूक दर्शक बन कर खड़ी हो।

प्राचीन भारत की प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था के एक दृश्यावलोकन से भी यह परिलक्षित होता है कि आज की प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था भी अपने कृत्यों, कर्तव्यों और प्रक्रिया के सन्दर्भ मे उन्ही के नक्शे–कदम पर चल रही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मनुस्मृति आदि प्राचीन स्रोत–ग्रन्थों का अध्ययन इस बात का प्रतिपादन करता है कि सरकार अपने विभिन्न विभागों के साथ किस प्रकार अपने कृत्यों का निष्पादन करती थी और किस प्रकार न्याय का परिदान किया जाता था। सिद्धान्त यह था कि जिस प्रकार कोई शल्य–चिकित्सक अपने शल्य–उपकरणों का उपयोग करके मानव–शरीर से किसी शंकु को निकालता है उसी प्रकार न्यायाधीश द्वारा भी किसी मामले में अन्याय रूपी शंकु का निकर्षण किया जाना चाहिए।

प्राचीन भारत की विधि और न्याय–व्यवस्था में राजा न्यायिक शक्ति का अन्तिम कोष था और वह किसी भी अपील की सुनावाई कर सकता था। उस समय राजा द्वारा नियुक्त किये गये न्यायधीश होते थे और जनता के भी न्यायालय होते थे। न्यायालयों को कर–निर्धारकों की सहायता उपलब्ध रहती थी और कर–निर्धारकों को समस्या की अन्तरंग जानकारी रहती थी। प्रक्रिया की सुस्थापित संहितायें, साक्ष्य के स्वरूप और अच्छे नियम, लोक और खुले विचारण की व्यवस्था और विधि के अनुसार न्याय प्राचीन भारत के स्वतंत्र और ऋजु न्याय–प्रशासन के मूल तत्व थे। आज के युग में न्याय–प्रशासन में सुधार की आवाज उठाने वालों को इस बात से प्रेरणा लेना चाहिए कि हमारा देशी विधि शास्त्र कतिपय मामलों के संदर्भ में सर्वोत्तम था और आज हमें उसका अनुसरण करना चाहिए। न्यायालय शुल्क के उत्कट आलोचक भारत की पुरातन शासन–व्यवस्था से प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं, जिसमें अपना मामला संस्थित करने के लिये वादी से किसी भी प्रकार के शुल्क–भुगतान की अपेक्षा नहीं की जाती थी। प्रशासन के भारी दबाव के अधीन रहते हुए भी अतीत के न्यायधीशों का निर्भीकपन पेशवाओं के

मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रामशास्त्री की इस संक्षिप्त कथा से भली भांति चित्रित होता है, जिसने पेशवा रघुनाथ राव को राजा की हत्या और सत्ता को हथियानें का दोषी घोषित किया था। मुख्य न्यायाधीश को पदमुक्त कर दिया गया था। उस समय धर्म (विधि) की सर्वोच्चता का जोरदार समर्थन किया गया और जनता ने रघुनाथ राव को पेशवा के रूप में स्वीकार करनें से इन्कार कर दिया था और उसे शासक की गद्दी से उतार दिया था। यह दृष्टान्त न्यायापालिका की स्वतंत्रता और एक न्यायाधीश द्वारा उन दिनों प्रदर्शित उसके अनुकरणीय आचरण का संज्ञापन करता है।

आज मानवाधिकारों का पताका चारो ओर फहर रहा है। संभवतः इन अधिकारों की वंशावली बहुत पुरानी है, क्योंकि वह ऋगुवेद से शुरू होती है। इन अधिकारों की परिधि में समता का अधिकार, संरक्षण का अधिकार, किसी भी धर्म को मानने का अधिकार, महिलाओं से सम्बन्धित विशेष अधिकार, बन्दियों के अधिकार और युद्ध के समय मानवाधिकारों की संरक्षा जैसे सर्वाधिक मूल्यवान अधिकार सम्मिलित है, जैसा कि वेदों, स्मृतियों और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में व्यवस्थित ढंग से व्यक्त किया गया है वे सभी अधिकार ठीक वैसे ही हैं, जैसे कि 10–12–1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्मित मानव–अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में सम्मिलित किया गया है। प्राचीन भारत में एक ऐसे अधिकार को भी मान्य किया गया था, जिसमें भारतीय मूल्यों की झलक मिलती है और जिसको वृहद मानव अधिकार की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इस अधिकार को सभी व्यक्तियों की प्रसन्नता के अधिकार को सभी व्यक्तियों की प्रसन्नता के अधिकार के रूप में जाना जा सकता हैं यह एक ऐसा अधिकार है, जिसमें सभी अधिकार सम्मिलित है। इन अधिकारों के साथ–साथ एक अन्य बात भी भारतीय मूल्य के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं और वह है अधिकरों के समनुरूपी व्यक्ति और राज्य के कर्तव्य। व्यक्ति और राज्य के लिये ऐसे कर्तन्य के सृजन की परिणति किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अधिकार के सृजन मे और उस अधिकार की संरक्षा में होती है। प्राचीन भारतीय विचारकों द्वारा जो यह अनोखी प्रविधि अंगीकृत की गई थी, उसका कारण यह था कि उनका यह दृष्टिकोण था कि अधिकार की भावना स्वार्थपरता को प्रोत्साहित करती है, जबकि कर्तव्य का बोध निःस्वार्थपरता को बढ़ावा देता है और सभी के लिये प्रसन्नता के अधिकार को सुनिश्चित करने में अपेक्षाकृत अधिक सहायक होता है।

सम्पूर्ण विश्व की संहिताबद्ध विधियों का अध्ययन यह दर्शित करता है कि विधि का उद्देश्य सत्य के सुनिश्चयन के बाद न्याय को प्राप्त करना ही है। आज की न्याय–व्यवस्था जिस न्याय या सत्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है, उन्ही को प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था भी प्राप्त करने का प्रयत्न करती थी। प्राचीन भारतीय विधि और न्याय व्यवस्था मूल्यों पर आधारित थी। विधि और न्याय व्यवस्था का अनोखा पक्ष यह था कि वह आध्यात्मिक और सदाचारिक मूल्यों पर आधारित थी। विधि और न्याय व्यवस्था में सदाचारिक विषय वस्तु का होना ठीक उसी प्रकार से महत्वपूर्ण है, जिस प्रकार किसी कोश में जीवन रस का विद्यमान होना महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार जीवन रस के बिना कोई कोश मृत है, उसी प्रकार सदाचारिक अवयव के बिना विधि और न्याय व्यवस्था भी मृत होती है। ऐसी व्यवस्था समाज को उच्च जीवन के लिये अनुप्रेरित नहीं कर सकती, क्योंकि उसमें कार्य करनें की शक्तिशाली इच्छा का अभाव होता है। इसीलिये प्राचीनकालिक ऋषियों–मुनियों ने विधि और न्याय व्यवस्था के अध्ययन और उसके प्रवर्तन में सदाचारिता और सत्य के महत्व पर जोर दिया था। सदाचार और सत्य व्यक्ति को उच्च–जीवन के लिये अनुप्राणित करते हैं और उन्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति में कार्य करनें के लिये समर्थ बनातें है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक

प्रगति की गति तेज होती है और सभ्यता समृद्विशाली बनती है।

प्राचीन भारत में विधि और न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में अनन्यतम अध्ययन यंत्र–तंत्र बिखरा हुआ है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, नीतिग्रन्थों, उनकी टीकाओं न्यायालयों के कतिपय विनिश्चयों और विधि तथा इतिहास के कतिपय आधुनिक लेखकों की कृतियों में उसका कुछ आकार और प्रकार देखनें को मिल जाता है। आज हम जो कुछ जानते हैं, वह यह है कि हमारी आज की विधि ओर न्याय व्यवस्था आयातित है और उसमें कुछ भी देशीपन नहीं हैं। हमारे देश का संविधान ही ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, जर्मन और जापान जैसे देशों से आयातित और भारतीय रूप में परिष्कृत और अंगीकृत है। हमारी दण्ड संहिता, साक्ष्य–विधि, दण्ड और व्यवहार प्रक्रिया, सम्पत्ति अन्तरण, संविदा सुखाचार आदि से सम्बन्धित विधि मूलतः ब्रिटिश विधि का परिष्कृत भारतीय रूप है और ऐसी स्थिति में हमें अपने पुरातन काल की ओर देखने को कुछ शेष नहीं रह जाता हैं अतः यह आवश्यक है कि हमारी आज की विधि और न्याय व्यवस्था के समानान्तर प्राचीन भारत की विधि और और न्याय व्यवस्था पर नजर डाली जाय और अतीत के गर्त में छिपे तत्सम्बन्धित खजानें को प्रकाश में लाया जाय।

यह तो विश्वविदित है कि भारत में विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान है और जनंसख्या के मामले में चीन के बाद दूसरा बड़ा राष्ट्र है। यदि यूही आबादी बढ़ती रही तो भारत जनंसख्या के मामले में चीन से भी आगे निकल जायेगा। भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ उन्नति तो हो रही है लेकिन समस्याएँ सुरसा की तरह मुँह फाड़े खड़ी है। शुरूआत हम भारत के ऊपरी हिस्से यानी कश्मीर से करें या दूसरे राज्यों की समस्या आज हर जगह अपने विकराल रूप में ताण्डव कर रहा है। तिस पर तुर्रा यह है भ्रष्टाचार और घटिया राजनीति का हर जगह बोलबाला है।

आजादी के पूर्व नेता और राजनीति शब्द के कुछ मायने होते थे। नेता जो जनता का नेतृत्व करे व जनता की समस्याओं का समाधान करने के लिए प्राण और प्रण से जुटा रहे। उसी तरह राजनीति शब्द है राज और नीति अर्थात् कामकाज सम्बन्धी नीतियां। परन्तु वर्तमान परिपेक्ष्य में राजनीति शब्द अब स्वार्थपरता का ही दूसरा अर्थ हो गया है। आजकल के लगभग नेताओं के सामने केवल एक ही लक्ष्य है वह कुर्सी पाने की राजनीति। वे कुर्सी पाने के लिए देश का अहित करने से भी नहीं चूकते। देश को बेचने से भी नहीं कतराते हैं। ठीक कालिदास की शैली में जिस डाल पर बैठे हैं उसी डाल का काटने तथा क्षति पहुँचाने से नहीं चूकते। उनका क्या है देश में बड़े–बड़े घोटाले होते रहते हैं चाहे वह बोफोर्स काण्ड हो, चारा घौटाला या ताबूत काण्ड। ये तो कुछ उदाहरण मात्र है यानी कि किसी अनाज के ढेर में से कुछ दाने उठाकर नमूने दिखाने जैसा। जिस देश की तिहाई जनता को दो वक्त की रोटी मुश्किल से नसीब हो रही है। उसी देश के छुट भैये नेताओं के भी बैंक में बड़े–बड़े डिपाजिट और स्विस बैंक में अथाह सम्पत्ति पड़ी हुई है। ये राजनेता कुर्सी पाने के लिए धर्म की आड़ लेते हैं तो कभी मंदिर मस्जिद का। चुनाव का मुद्दा देश का विकास ने होकर यहाँ की जनता की उन्नति न होकर जातिवाद एवं संप्रदायवाद होता जा रहा है। देश की स्थिति का सम्पूर्ण आकलन किया जाय तो इसकी आंतरिक सुरक्षा एवं व्यवस्था की बुरी स्थिति देखकर रूह काँप जाती है।

आज घटिया राजनीति का ही परिणाम है कि बांग्लादेश से करोड़ों घुसपैठिये भारत में आ चुके हैं और संप्रति वर्तमान में भी आ रहे हैं किन्तु वोट बैंक की लालच में सत्ता लोलुप ये राजनेता इन्हें वोटर लिस्ट में नाम डलवाने और राशनकार्ड

दिलवाने में कोई हिचक नहीं करते है जिसके कारण यहा की जनता में भूखमरी, बेरोजगारी, अराजकता एवं विद्रोह की भावना बढ़ती जा रही है। जिसका परिणाम हे कि हजारों नवयुवक और नवयुवतियां जो अपनी ऊर्जा देश के विकास में लगाते वह उग्रवादी बनकर देश में आतंक और मौत फैलाने का काम कर रहे हैं। देश की मौजूदा हालात देखकर तो यही लगता है कि–

''बर्बादे गुलिस्तां करने को बस एक ही उल्लू
काफी है,

अंजामे गुलिस्ता क्या होगा हर शाख पर उल्लू
बैठे हैं।''

वर्तमान समय में राजनीति में कुछ युवाओं का प्रवेश हुआ है। आशा है कि ये युवा नेता भ्रष्टाचार से बंधी इस भारतीय राजनीति को एक उद्देश्यपूर्ण और स्वस्थ मानसिकता की ओर ले जायेंगे क्योंकि –

''बंदूकों की नोकों पर आजादी देश की पलती है,

इतिहास उधर मुड़ जाता है जिस ओर जवानी
चलती है।''

अब हम भारतीय जनता के समक्ष यह समय आ गया है कि हम इस देश के जिम्मेदार नागरिक बनें और इस देश को विकास के पथ पर ले जाने वाले कुशल संचालक के हाथ में इस देश की बागडोर को सौंपे।

पाप करने वाले से ज्यादा दोषी पाप सहने वाला होता है सदियों हम परतंत्र रहे और अभी तक हमारी मानसिकता सिर झुकाकर जीने की बनी हुई है। पहले मुगलों के गुलाम थे उसके बाद अंग्रेजों के और अब अपने ही देश के कुछ स्वार्थी नेताओं के हम गुलाम बने हुए हैं। इसलिए देश में फैले भ्रष्टाचार और घटिया राजनीति को खत्म करने के लिए सम्पूर्ण भारतीय जनता कृतसंकल्प हो। तभी भारतीय मूल्यों को व्यवस्था में स्थान मिल पायेगा जो हमारे वेदो उपनिषदे और प्राचीन न्याय व्यवस्था में सदैव से ही रहा है।

सन्दर्भ सूची

1. गैशेला वाचस्पीत (हिन्दी व्याख्या कार) ''कौटिल्यभ् अर्थशास्त्रम्'' चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, 2000, पृष्ठ–117–119.
2. गवर्नेंस नाऊ, 16–31 सितम्बर 2013 ,पृष्ठ– 21.
3. डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन विश्व भारती अनुसंधान परिषद ज्ञानपुर वाराणसी, पृष्ठ– 453.
4. दुर्गादास बसु भारत का संविधान एक परिचय छठा संस्करण प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया प्रा०लि० (नई दिल्ली), 1996, पृष्ठ– 363.
5. भारत का संविधान, भारत सरकार विधि और व्याय मंत्रालय, 2003 ,पृष्ठ– 125.
6. दैनिक जागरण कानपुर संस्करण, 20 जून 2011.
7. इण्डिया टुडे 31 अक्टूबर 2012, पृष्ठ– 17.

Copyright © 2017, Dr. Geeta Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.